करणवीर्य

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,
पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

करणवीर्य शरीर की शक्ति है। मन, वचन और काया की प्रवृत्ति करणवीर्य के द्वारा की जाती है। यह हमारी प्राण शक्ति है। हमारे शरीर में शक्ति के अनेक केन्द्र हैं। नाभि का स्थान शक्ति केन्द्र है। भोजन, खान–पान, वीर्यसंरक्षण के द्वारा करणवीर्य बनता है। इससे शरीर की शक्ति का ऊर्ध्वारोहण होता है। आहार, चिन्तन, जलपन आदि सब क्रियाएं प्राण और पर्याप्ति पर निर्भर करती है। बोलने में प्राणी का आत्मीय प्रयत्न होता है, वह प्राण है। उस प्रयत्न के अनुसार शक्ति भाषा योग्य पुद्गलों का संग्रह करती है वह भाषा पर्याप्ति है। आहर पर्याप्ति और आयुष्य प्राण, शरीर पर्याप्ति और काय प्राण, इन्द्रिय पर्याप्ति और इन्द्रिय प्राण, श्वासोच्छवास पर्याप्ति और श्वासोच्छवास प्राण, भाषा पर्याप्ति और भाषा प्राण, मनः पर्याप्ति और मनः प्राण ये परस्पर सापेक्ष है। इससे हमें यह निश्चय होता है कि प्राणियों के शरीर के माध्यम से होने वाली जितनी क्रियाएं हैं वे सब आत्म शक्ति और पौद्गलिक शक्ति दोनों के पारस्परिक सहयोग से ही होती है।

मानव का जीवन प्राण शक्ति पर आधारित रहता है। प्राण शक्तियां दस हैं– स्पर्शन इन्द्रिय प्राण, रसन इन्द्रिय प्राण, घ्राण इन्द्रिय प्राण, चक्षु इन्द्रिय प्राण, श्रोत्र इन्द्रिय प्राण, मन प्राण, वचन प्राण, काय प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण, आयुष्य प्राण। प्राण शक्तियां सब जीवों में समान नहीं होतीं। फिर भी कम से कम चार तो प्रत्येक प्राणी में होती ही है। शरीर, श्वास–उच्छ्वास, आयुष्य और स्पर्शन इन्द्रिय इन जीवन शक्तियों में जीवन का मौलिक आधार है। प्राण शक्ति और पर्याप्ति का कार्य कारण सम्बन्ध है जीवन शक्ति को पौद्गलिक शक्ति की अपेक्षा रहती है। जन्म के पहले क्षण में प्राणी कई पौद्गलिक शक्तियों की रचना करता है। उनके द्वारा स्वयोग्य पुद्गलो का ग्रहण, परिणमन और उत्सर्जन होता है। उनकी रचना प्राण शक्ति के

अनुपात पर होती है। जिस प्राणी में जितनी प्राण शक्ति की योग्यता होती है, वह उतनी ही पर्याप्तियों का निर्माण कर सकता है।

पर्याप्ति रचना में प्राणी को अन्तर मुहूर्त का समय लगता है। यद्यपि उनकी रचना प्रथम क्षण में ही प्रारम्भ हो जाती है। पर आहार–पर्याप्ति के सिवाय शेष सबों की समाप्ति अन्तर मुहूर्त से पहले नहीं होती। स्वयोग्य पर्याप्तियों की परिसमाप्ति न होने तक जीव अपर्याप्त कहलाते हैं और उसके बाद पर्याप्त। उनकी समाप्ति से पूर्व ही जिनकी मृत्यु हो जाती है, वे अपर्याप्त कहलाते हैं। यहां इतना सा जानना आवश्यक है कि आहार, शरीर और इन्द्रिय इन तीन पर्याप्तियों की पूर्ण रचना किए बिना कोई प्राणी नहीं मरता।

पर्याप्ति और अपर्याप्ति दोनों जीवों की अवस्थाएं हैं। जीवों की जो श्रेणियां की गई हैं उन्हीं के आधार पर ये चौदह भेद बनते हैं। इनमें एकेन्द्रिय जीवों के सिवाय सूक्ष्म और बादर ऐसा भेद–करण और किस का नहीं हैं। क्योंकि एकेन्द्रिय के सिवाय और कोई जीव सूक्ष्म नहीं होते। सूक्ष्म की कोटि में हम उन जीवों को परिगणित करते हैं, जो समूचे लोक में जमें हुए होते हैं, जिन्हें अग्नि जला नहीं सकती, तीक्ष्ण से तीक्ष्ण शस्त्र छेद नहीं कर सकते। जो अपनी आयु से जीते हैं और अपनी मौत से मरते हैं, और जो इन्द्रियों द्वारा नहीं जाने जाते। प्राचीन शास्त्रों में सर्व जीवमयं जगत् इस सिद्धान्त की स्थापना हुई, वह इन्हीं जीवों को ध्यान में रखकर हुई है।

कई भारतीय दार्शनिक परम ब्रह्म को जगत् व्यापक मानते हैं, कई आत्मा को सर्वव्यापी मानते हैं और जैन दृष्टि के अनुसार इन सूक्ष्म जीवों से समूचा लोक व्याप्त है। इसका तात्पर्य यही है कि चेतन सत्ता लोक के सब भागों में हैं। कई कृमि, कीट सूक्ष्म कहे जाते हैं किन्तु वस्तुतः वे स्थूल हैं। वे आंखों से देखे जा सकते हैं। साधारणतया न देखे जाएं तो सूक्ष्म दर्शन यन्त्रों से देखे जा सकते हैं अतएव उनमें सूक्ष्म जीवों की कोई श्रेणी नहीं बादर एकेन्द्रिय के एक जीव का एक शरीर हमारी दृष्टि का विषय नहीं बनता। हमें जो एकेन्द्रिय शरीर दीखते हैं वे असंख्य जीवों के, असंख्य शरीरों के पिण्ड होते हैं, सचित्त मिट्टी का एक छोटा सा रज–कण, पानी की एक बूंद या अग्नि की एक चिनगारी–ये एक जीव के शरीर नहीं हैं। इनमें से प्रत्येक

में अपनी–अपनी जाति के असंख्य जीव होते हैं और उसंख्य शरीर पिण्डीभूत हुए रहते हैं तथा उस दशा में दृष्टि विषय भी बनते हैं। इसलिए वे बादर हैं।

साधारण वनस्पति के एक, दो, तीन या चार जीवों का शरीर नहीं दीखता क्योंकि उनमें एक एक–एक जीव में शरीर निष्पादन की शक्ति नहीं होती। वे अनन्त जीव मिलकर एक शरीर का निर्माण करते हैं। इसलिए अनन्त जीवों के शरीर स्थूल परिणतिमान होने के कारण दृष्टि गोचर होते हैं। इस प्रकार एकेन्द्रिय के सूक्ष–अपर्याप्त और पर्याप्त, बादर अपर्याप्त और पर्याप्त– ये चार भेद हैं। इसके बाद चतुरिन्द्रिय तक के सब जीवों के दो–दो भेद होते हैं। पंचेन्द्रिय जीवों के चार विभाग हैं। जैसे एकेन्द्रिय जीवों की सूक्ष्म और बादर–ये दो प्रमुख श्रेणियां हैं, वैसे पंचेन्द्रिय जीव समनस्क और अमनस्क इन दो भागों में बंटे हुए है। शरीर में करणवीर्य शक्ति को उत्पन्न करती है। शक्ति सम्पन्न होने पर करणवीर्य बढ़ता है। करणवीर्य जड़ है। गलन मिलन धर्मा और परिवर्तनशील है। आत्मा पर परिवर्तन का नियम लागू नहीं होता। करणवीर्य आत्मा से संचालित है।